R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-17, अङ्क-1 जनवरी 2018 (1)

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

वार्षिकोत्सव एवं प्रवेश शिविर

चौसठ ऋद्धि विधान

(दिनांक 01 फरवरी से 06 फरवरी 2018 तक)

चलो मङ्गलायतन! बनो मङ्गलायतन! रहो मङ्गलायतन!

तीर्थधाम मङ्गलायतन के 15वें वार्षिक महोत्सव के उपलक्ष्य में

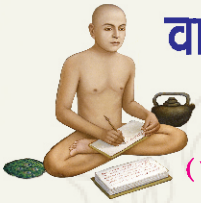

वार्षिकोत्सव एवं प्रवेश शिविर

चौसठ ऋद्धि विधान

(दिनांक 01 फरवरी से 06 फरवरी 2018 तक)

आमन्त्रणपत्रिका

सत्धर्म प्रेमी बन्धुवर!

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

जिनशासन के प्रबल योग एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तद्भक्त प्रशममूर्ति चम्पाबेन के प्रभावना योग में, तीर्थधाम मङ्गलायतन अपने जीवन के 15 वर्ष पूर्ण कर चुका है।

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी चैतन्य की भावना के साथ 15वाँ वार्षिक महोत्सव धूमधाम से मनाया जा रहा है तथा भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन पात्रता शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

विदेह सदृश तीर्थधाम मङ्गलायतन के उन्मुक्त वैदेही वातावरण में पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों के साथ-साथ, देश के उत्कृष्ट कोटि के विद्वान **बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़; बालब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी, खनियांधाना; पण्डित अभयकुमार शास्त्री, देवलाली; पण्डित वीरेन्द्रकुमार जैन, आगरा एवं तीर्थधाम मङ्गलायतन के विद्वानों का लाभ प्राप्त होगा।** इस ज्ञानयज्ञ में आप सभी आबाल-गोपाल सादर आमन्त्रित हैं।

विधान आयोजनकर्ता :

स्व० श्री पद्मचन्दजी बजाज की स्मृति में हस्ते श्री प्रेमचन्दजी बजाज परिवार कोटा

मंगल कलश :

श्रीमती पुष्पाबेन गाँधी, अहमदाबाद
श्री जैनबहादुर जैन, कानपुर
श्री राकेश जैन, लखनऊ;
श्री राजकुमार जैन, सहारनपुर

शिविर उद्घाटनकर्ता :

श्री पी० के० जैन, रुड़की

झण्डारोहणकर्ता :

श्री निहालचन्द्रजी जैन, जयपुर

आयोजक

श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़

सम्पर्कसूत्र :— 09997996346, 9897890893, 9756633800

info@mangalayatan.com; www.mangalayatan.com

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-17, अङ्क-1 (वी.नि.सं. 2544) जनवरी 2018

गतांक से आगे...

प्रशममूर्ति बहिनश्री के वचनामृतों का भावानुवाद

प्रथम भूमिका में मुमुक्षु को, थोड़ी उलझन रहती है।
किन्तु मूढ़ नहीं होता है, ज्ञान चेतना बहती है॥
सच्चे सुख का खोजी है, रहना बाहर स्वीकार नहीं।
उलझन में भी मार्ग खोजना, उलझन का भी भार नहीं॥
जितना पौरुष जागे उर में, उतना वीर्य काम करता।
नहीं स्वभाव में हठ चलती है, मार्ग सहज ही है मिलता॥34॥

काल अनन्तों से प्राणी को, अशुभ सहज ही होता है।
शुभभावों की भी आदत में, बिना प्रयत्न ही होता है।
सहज स्वभाव अनादि अपना, ख्याल नहीं आ पाता है।
सूक्ष्म करे उपयोग तभी वह, निज स्वभाव को पाता है॥35॥

उपयोग पलटना चाहे पहले, किन्तु पलटे रुचि नहीं।
उसको मार्ग नहीं मालुम है, उसकी होगी मुक्ति नहीं॥
प्रथम रुचि को पलटे तो, उपयोग सहज ही पलटे है।
यही मार्ग है, सच्चा भविजन, यथार्थ विधि का यही क्रम है॥36॥

भावानुवाद—संजयकुमार जैन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती ओखीबाई
धर्मपत्नी
श्री जसराजजी बागरेचा
हस्ते
श्री अशोककुमार जैन बागरेचा
बैंगलोर - 560019

क्या - कहाँ

नाटक सुनत हिये फाटक..... 5
वीतराग मार्ग का मधुर प्रवाह..... 9
कारण-कार्य की अपूर्व..... 14
मोक्षमार्ग में जो सम्यग्ज्ञान..... 16
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का
पद्मनन्दि पंचविंशति पर प्रवचन..... 20
श्री आचार्यदेव अर्हद्बलि..... 23
कोरा शास्त्रज्ञान केवल बोझा है..... 25
उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला..... 27
समाचार-दर्शन..... 31

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

'नाटक सुनत हिये फाटक खुलत हैं'

'समयसार-नाटक' द्वारा शुद्धात्मा का श्रवण करने से हृदय के फाटक खुल जाते हैं

[समयसार-नाटक पर हुए पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों के अंश]

* अरिहन्त सिद्ध और साधु की स्तुति के बाद सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा चलती है।
* अहो! जगत में सम्यक्त्वी जीव ही सदा सुखी हैं। भगवान के दास और जगत से उदास—ऐसे सम्यक्त्वी जीव स्वार्थ में सच्चे हैं, अर्थात् आत्मपदार्थ का सच्चा ज्ञान करके, उसे वह साध रहे हैं; और परमार्थरूप जो मोक्ष, उसमें उनका चित्त बराबर लगा है; आत्मा का सच्चा ज्ञान है, और मोक्ष का सच्चा प्रेम है। मोक्ष की साधना में ही उनका चित्त लगा है।
* सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा गृहस्थदशा में हो तथा दूसरी क्रियाएँ करता दिखाई दे किन्तु वह तो 'जैसे धाय माता बालक का पालन करे वैसे' अन्तर से न्यारा है, उसकी रुचि का प्रेम संसार में बिल्कुल नहीं है, एक मोक्षरूप परमार्थ को ही साधने की लगन है। अन्तर में उसकी दृष्टि गृहस्थ दशा से पार अपने आत्मा को देखती है। असंयत दशा में होने पर भी ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, मोक्ष का साधक होने से प्रशंसनीय है। चारों गतियों के जीवों को ऐसा सम्यग्दर्शन हो सकता है।
* अब सम्यग्दृष्टि के अन्तर में, भेदज्ञान कैसा प्रगट हुआ है? तो कहते हैं कि गणधर जैसा। अहो! जो सम्यग्दृष्टि है, उसके हृदय में, उसके आत्मा में गणधर भगवान जैसा, विवेक प्रगट हुआ है। विवेक अर्थात् स्व-पर का भेदज्ञान, वह तो छोटे सम्यग्दृष्टि मेंढ़क को और बड़े गणधरदेव, दोनों को समान है; दोनों, अपने आत्मा को विकल्प से भिन्न शुद्धस्वरूप अनुभव करते हैं। स्व को स्व और पर को पर—इस प्रकार स्व-पर की भिन्नता जानने में सभी सम्यग्दृष्टि समान हैं। किसी

सम्यग्दृष्टि के अन्तर में अपने शुद्धात्मा के अतिरिक्त परभाव का एक अंश भी अपना भासित नहीं होता।

* धर्मी के अनुभव में आनन्द का झरना फूटा है, सम्यग्दर्शन हो और भेदज्ञान हो, वहाँ आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है। आत्मा के स्वभाव का जो सच्चा सुख, उसे ही वह सुख मानता है; आत्मा के स्वभाव के सिवाय अन्यत्र किसी विषय में वह सुख नहीं मानता। अहा, अतीन्द्रिय स्वाधीन सुख का स्वाद जिसने चखा है, वह इन्द्रिय-विषयों में स्वप्न में भी सुख नहीं मानता। वह अपने आत्मा की अडोल महिमा को जानता है। अहा, सम्यग्दर्शन की अपार महिमा है।
* सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा, अपने सम्यग्दर्शनादि गुणों को प्रगट करके, उस सम्यग्दर्शनादि स्वभाव को अपने में ही धारण करता है। रागादि परभावों को वह अपने में धारण नहीं करता। स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुए सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावों को ही वह आत्मा में धारण करता है। श्रीमद् राजचन्द्रजी भी कहते हैं कि—

स्वद्रव्य के धारक त्वरा से बनो,
परद्रव्य का धारकपना त्वरा से त्यागो।

* इस प्रकार धर्मी, निश्चय को ही धारण करता है और रागादिव्यवहार को धारण नहीं करता। इसका नाम धर्म का विवेक है। विवेक के बिना धर्म नहीं होता।
* निर्विकल्प भेदज्ञान में, आत्मा और राग भिन्न पड़ जाते हैं। अन्तर में शुद्धात्मा को अनुभव में लिया, वहाँ जीव और अजीव का अत्यन्त पृथक्करण हो गया। एक ओर शुद्धजीव स्वपने अनुभव में आया और इसके अतिरिक्त अन्य सब अजीव में रह गया। ऐसी अन्तर की क्रिया से धर्मीजीव को मोक्ष का फाटक खुल जाता है, उसी के द्वारा वह मोक्ष का साधन करता है।
* वह धर्मी जीव आत्मशक्तियों को साधता है और ज्ञान के उदय की

आराधना करता है; ज्ञान का उदय अर्थात् पूर्ण केवलज्ञान का प्रकाश, उसकी धर्मी जीव आराधना करता है; आत्मशक्ति की वृद्धि के उद्यमसहित ज्ञानसूर्य को प्रकाशित करता है। भेदज्ञान तो प्रगट हुआ है और केवलज्ञान की आराधना करता है।

* ऐसे गुणोंसहित सम्यक्त्वी धर्मात्मा, भवसागर को पार करता है। ऐसे सम्यग्दर्शन के बिना, अन्य किसी उपाय से भवसागर को तरना चाहे तो नहीं तर सकता। जिसे भवसागर से पार होना हो, और मोक्ष प्राप्त करना हो, वह इस सम्यग्दर्शन को धारण करे। सम्यग्दर्शन को धारण करनेवाला जीव अल्प काल में भवसागर को पार करके मोक्ष प्राप्त करता है।
* सम्यग्दृष्टि की महिमा बताई, अब उससे विरुद्ध मिथ्यात्वी जीव कैसा होता है, वह भी बताते हैं। धर्म क्या, आत्मा का स्वभाव क्या, जीव -अजीव का भिन्न-भिन्न स्वरूप कैसा है ? उसे तो वह जानता नहीं, ऐसे मिथ्यात्वीजीव का, सारा कथन तत्त्व से विरुद्ध मिथ्यात्वमय होता है, भगवान कथित अनेकान्तमय सच्चा वस्तुस्वरूप तो वह जानता नहीं है; इसलिए एकान्त का पक्ष करके स्थान-स्थान पर वह वाद-विवाद और लड़ाई खड़ी करता है। जगत में ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव होते हैं, उनका ज्ञान करवाने के लिए उनका वर्णन किया है। ऐसा मिथ्यात्व-भाव सर्वथा छोड़ने योग्य है।

  सम्यग्दृष्टि कैसा होता है, यह पहिचान करवाई तथा मिथ्यात्वी जीव कैसा होता है, यह भी पहिचान करवाई। सम्यग्दृष्टि तो आत्मशक्ति को विकसित करके भवसागर से पार होता है और मिथ्यादृष्टि तो आत्मघाती महा पातकी है। ऐसा जानकर मिथ्याभाव छोड़कर सम्यक्त्व की आराधना करता है।
* अब कहते हैं कि अहो ! उन सिद्धभगवन्तों को और उसके उपायरूप रत्नत्रय को वन्दन हो कि जिसके प्रसाद से, मैं इस समयसार नाटक ग्रन्थ की रचना करता हूँ।

वंदूं शिव अवगाहना, अरु वंदूं शिवपंथ;
जसु प्रसाद भाषा कहूँ नाटक नाम गरन्थ।

अत्यन्त विनयपूर्वक पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि अहो! जिनके प्रसाद से हिन्दी भाषा में इस नाटक समयसार जैसे महान अध्यात्मरस झरते ग्रन्थ की रचना होती है, उन असंख्य प्रदेशरूप आत्म-अवगाहनावाले सिद्ध भगवन्तों को, मैं वन्दन करता हूँ।

✻ सन्तों की ओर का विषय और अपनी लघुतापूर्वक कहते हैं कि अहो! कहाँ तो यह समयसार जैसा महान कार्य, और कहाँ मेरी अल्पबुद्धि! श्री कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य जैसे महा समर्थ मुनि भगवन्तों ने जिस समयसार की रचना का महान कार्य किया, उसी अनुसार मैं भी उनके भावों को इस कविता में गूँथने का अपनी अल्पबुद्धि से प्रयत्न करता हूँ। कहाँ वे अगाध ज्ञान के सागर मुनि भगवन्त! और कहाँ मैं! तो भी भक्तिवश मैं इस समयसार नाटक ग्रन्थ की हिन्दी में रचना करने के लिए, उद्यमी हुआ हूँ।

हीरा की कनी से वींधे हुए रत्न-मोती जो तैयार हों, तो फिर उन्हें रेशम की डोरी में पिरोकर माला बनाना सरल है; उसी भाँति समयसार तो रत्न है, मोती है, और अमृतचन्द्रसूरि ने टीका से उसका अर्थ छेद -भेदकर, स्पष्ट खोलकर समझने के लिए अत्यन्त सरल कर दिया है, इसलिए मेरी अल्पबुद्धि से समझने में आया और उसे शास्त्ररूप से गूँथना सरल हो गया। इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने जिस प्रकार से कहा, उसी प्रकार कहने के लिये मेरी मति सावधान हुई है। जिस प्रकार प्रौढ़ पुरुष जिस भाषा को बोलते हैं, उसको सीखकर बालक भी वैसी ही भाषा बोलता है; उसी प्रकार महापुरुषों ने शास्त्र में जो भाव कहे, तदनुसार समझकर मैं इस शास्त्र में कहता हूँ!

देखो तो सही, समयसार की रचना तो रेशम की डोरी में सच्चे रत्न पिरोने जैसी है। इसमें अध्यात्म-रस का झरना बहता है और भाव से इसका श्रवण करते ही हृदय का फाटक खुल जाता है।

वीतराग मार्ग का मधुर प्रवाह

[श्री प्रवचनसार गाथा 172 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

✻ अपना या पर का आत्मा इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। अपने आत्मा को स्वसंवेदन से जिसने प्रत्यक्ष किया है, वही दूसरे आत्मा का सच्चा अनुमान कर सकता है। जिसने अपने आत्मा को अनुभव में नहीं लिया है, वह दूसरे धर्मात्माओं को भी नहीं पहचान सकता। प्रत्यक्षपूर्वक का अनुमान सच्चा होता है। प्रत्यक्षरहित अकेला अनुमान सच्चा नहीं होता।

✻ स्वसन्मुख होकर आत्मा को प्रत्यक्ष किये बिना, जीव ने बाहर का ज्ञान अनन्त बार किया, और उसमें सन्तोष मान लिया। अरे, आत्मा की प्रत्यक्षतारहित ज्ञान वास्तव में ज्ञान हीं नहीं है; इसलिए 'जहाँ तक मेरा आत्मा मुझे प्रत्यक्ष न हो, वहाँ तक मैंने वास्तव में कुछ भी जाना ही नहीं है' – इस प्रकार जब तक जीव को अपनी अज्ञानता भासित न हो, और दूसरे परलक्ष्यी ज्ञान में अपनी महानता मानकर सन्तुष्ट हो जावे—तब तक, आत्मा का सच्चा मार्ग जीव के हाथ में नहीं आता। अन्तर में परम स्वभाव से परिपूर्ण भगवान आत्मा के सन्मुख होने पर ही, परम तत्त्व की प्राप्ति होती है और मोक्षमार्ग हाथ में आता है।

सन्त कहते हैं : तू भगवान है!

✻ भाई, अपने आत्मा के समक्ष देखे बिना, अर्थात् आत्मा का स्वसंवेदन प्रत्यक्ष किये बिना, अज्ञानदशा का सर्वोच्च शुभभाव भी तूने किया, ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु इससे आत्मा के कल्याण का मार्ग किंचित्मात्र तेरे हाथ में नहीं आया। अत: ज्ञान को पर-विषयों से भिन्न करके स्व-विषय में जोड़। इन्द्रियज्ञान के व्यापार में ऐसी शक्ति नहीं है कि आत्मा को स्व-विषय बनाकर जाने। तू परमात्मा, तुझे स्वयं

अपना ज्ञान करने के लिए इन्द्रियों या राग के पास जाकर भीख माँगनी पड़े, ऐसा भिखारी तू नहीं है। अहो, सन्त कहते हैं कि तू भिखारी नहीं किन्तु भगवान है।

* अज्ञानियों के अनुमान में आ जाए, ऐसा यह आत्मा नहीं है। अकेले परज्ञेय को अवलम्बन करनेवाला ज्ञान, वह अज्ञान है, वह ज्ञान नहीं है। ज्ञान का भण्डार आत्मा, वह स्वयं अपने ज्ञानस्वभाव का अवलम्बन लेकर जिस ज्ञानरूप परिणमन करे, वही ज्ञान मोक्ष का साधनेवाला है।
* यह शरीर घट कहलाता है, घड़े के समान, वह क्षणिक नाशवान है। वह घट और घट को जाननेवाला—यह दोनों एक नहीं हैं किन्तु भिन्न हैं। शरीर की अंगभूत इन्द्रियाँ, वह कहीं आत्मा के ज्ञान की उत्पत्ति का साधन नहीं हैं। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभावी आत्मा हैं, उसे साधन बनाकर जो ज्ञान होता है, वही आत्मा को जाननेवाला होता है। पुण्य-पाप भी इसका स्वरूप नहीं है। अतीन्द्रिय ज्ञान ऐसा नहीं है कि पुण्य-पाप की रचना करे। राग की रचना करना, आत्मा का कार्य नहीं है; आत्मा का वास्तविक कार्य (अर्थात् परमार्थ लक्षण) तो अतीन्द्रिय ज्ञानचेतना है; उस चेतनास्वरूप से अनुभव में लेते ही सच्चे आत्मा का स्वरूप अनुभव में आता है। ऐसे आत्मा को अनुभव में ले, तभी जीव को धर्म होता है।
* आत्मा स्वयं उपयोगस्वरूप है, उसे पर का आलम्बन नहीं है; बाहर से वह उपयोग को लाता नहीं है। अन्तर की एकाग्रता से जो उपयोग कार्य करे, वही आत्मा का स्व-लक्षण है। ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान का धनी भगवान अशरीरी आत्मा, वह स्वयं को भूलकर शरीर धारण कर-करके भव में भटके, यह तो लज्जाजनक है, यह कलंक, आत्मा को शोभा नहीं देता। बापू! तू अशरीरी चैतन्य भगवान, तेरा चैतन्य उपयोग शरीर में से, इन्द्रियों में से, या राग में से नहीं आता; ऐसे आत्मा का संस्कार अन्तर में जिसने डाल लिया है, उसके परभव में भी वह संस्कार साथ रहेगा; इसलिए बार-बार अभ्यास करके ऐसे

आत्मस्वभाव के संस्कार अन्दर में दृढ़ करनेयोग्य हैं। बाहर की पढ़ाई से यह ज्ञान नहीं आता, यह तो अन्तर के स्वभाव से ही विकसित होता है। अन्तर में स्वभाव के घोलन का संस्कार बार-बार अत्यन्त दृढ़ करने पर, वह स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष होता है, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र होता है; वही धर्म की सच्ची कमाई है, और ऐसी धर्म की कमाई का यह अवसर है।

* आत्मा का चिह्न जो उपयोग, उसे कोई ले नहीं सकता, आत्मा का सहज स्वभाव जैसे नित्य है; वैसे ही उसमें अन्तर्मुख होकर अभेद हुआ उपयोग भी नित्य आत्मा के साथ अभेद रहेगा, उसका किसी के द्वारा नाश नहीं हो सकेगा।
* अस्तित्व, नित्यत्व और समाधिसुख से भरपूर जो उपयोगस्वरूप आत्मा, उसमें जिसकी प्रीति हुई, उसको भिन्नरूप अनित्य ऐसे शरीरादि संयोगों में आत्मबुद्धि नहीं रहती, और उनके लक्ष्य से होनेवाले रागादि परभावों में भी उसकी प्रीति उड़ जाती है। ज्ञानोपयोग अन्तर्मुख होकर अपने अस्तित्व, नित्यत्व और समाधिसुख के वेदन में लीन हुआ, वह उपयोग किसी के द्वारा नष्ट नहीं होता। वह उपयोग किसी दूसरे के द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ था, जो उसके द्वारा नाश किया जा सके।
* जिसने इन्द्रियों में या राग में अपने उपयोग का अस्तित्व माना, अथवा उन इन्द्रियों या राग से उपयोग की उत्पत्ति होना माना, वह अपने उपयोग को बाहर से आना मानता है; इन्द्रियों और राग का नाश हो जाने पर उसका उपयोग भी नष्ट हो जाएगा, परन्तु ऐसा पराधीन उपयोग आत्मा का स्वरूप नहीं है, आत्मा का उपयोग स्वाधीन है; स्वाधीन अर्थात् आत्मा के आश्रय से प्रगट हुआ उपयोग, आत्मा से कभी छूटता नहीं, कोई उसका हरण नहीं कर सकता। ऐसा उपयोगस्वरूप आत्मा का परमार्थ स्वरूप है।

* अहो! सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा उपयोगस्वरूप देखा है। नित्य उपयोगलक्षणरूप अपना आत्मा जिसने देखा, उसने सर्वज्ञ को पहचाना, उसने सर्वज्ञ की आज्ञा जानी। जो जीव उपयोगस्वरूप आत्मा को अन्यरूप से मानता है, वह भगवान की आज्ञा से विरुद्ध है। वह जीव मिथ्या मान्यता से क्षण-क्षण में भावमरण करके आत्मा के आनन्द का हनन करता है, वह हिंसा है। उस हिंसा और भावमरण से आत्मा कैसे छूटे? कि अपने आत्मा के नित्य उपयोगस्वरूप को जानकर, उसमें उपयोग जोड़े, तो वह उपयोग किसी के द्वारा नष्ट नहीं हो सकता; आनन्दमय उपयोग से जीवित आत्मा का जीवितव्य किसी के द्वारा नष्ट नहीं हो सकता; भावमरण नहीं हो सकता। सुख का पुंज आत्मा है, वह ऐसे उपयोग से अनुभव में आता है, उसमें कोई विघ्न नहीं। ऐसा निर्विघ्न उपयोग, वह महान आनन्दरूप मंगल है।

* स्व-सन्मुख हुआ वह अतीन्द्रिय उपयोग, कर्म से और राग से छूटकर अपने आनन्दस्वभाव में ऐसा लीन हुआ है कि उसे कोई आत्मा से छुड़ा नहीं सकता। स्वभाव में लीन हुआ उपयोग, ध्रुव के साथ अभेद हो गया, चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि के ऐसा उपयोग प्रगट होता है, ऐसा उपयोग, वह जीव का धर्म है।

* उपयोग में विकार नहीं, जैसे सूर्य के प्रकाश में मैल नहीं; वैसे ही आत्मा के उपयोग-प्रकाश में रागादिरूप मलिनता नहीं। उपयोग तो शुद्धस्वरूप है। राग को उपयोग जानता भले हो परन्तु राग और उपयोग की एकता नहीं है किन्तु भिन्नता है। ज्ञान है, वह राग नहीं; राग है, वह ज्ञान नहीं। ज्ञान है, वह आत्मा है। उपयोगस्वरूप से अपने आत्मा का अनुभव करे, उसमें रागादि का अत्यंत अभाव है, ऐसे आत्मा का अनुभव, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। राग तो राग में है, ज्ञान में राग नहीं है। धर्मी अपने ज्ञानरूप से ही अपने को अनुभव करता है; जहाँ ज्ञान, वहाँ मैं हूँ, राग में मैं नहीं हूँ और जहाँ मैं हूँ, वहाँ राग नहीं

है—ऐसा स्पष्ट भेदज्ञान करे, तब जीव को धर्म हो, अर्थात् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट हो; इसके अतिरिक्त धर्म नहीं होता।

मोक्ष के लिए तुरन्त करने जैसा

✻ चैतन्य भगवान की यह बात, किन शब्दों में इसे कहें ? इसका जो अन्तर में भाव है, उस भाव को लक्ष्य में ले तो चैतन्य भगवान की कीमत समझ में आए.... बाकी शब्दों में चाहे जितना कहा जाए, तो भी उसका पार नहीं पड़ सकता, और शब्दों के लक्ष्य से वह समझ में नहीं आ सकता; शब्दातीत वस्तु, इन्द्रियातीत-चैतन्य वस्तु, उसमें आन्तरिक उपयोग को ले जाए तो उसके परमानन्द का अनुभव हो। बाकी शब्द तो श्रवणेन्द्रिय का विषय, और आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय, इन्द्रियज्ञान से वह पकड़ में नहीं आ सकता; स्वयं इन्द्रियों से पार, राग से पार होकर, अपने आत्मा में उपयोग लगा... वह उपयोग रागरहित शुद्ध हुआ, इन्द्रियों के अवलम्बनरहित अतीन्द्रिय हुआ, प्रत्यक्ष हुआ, आनन्दरूप हुआ। ऐसा शुद्धोपयोग स्वभावी आत्मा ही सच्चा आत्मा है। ऐसे आत्मा को निर्णय में लेकर अनुभव करना ही मोक्ष के लिए कर्तव्य है। वह तुरन्त ही करने जैसा है, उसमें विलम्ब करना उचित नहीं। धर्मी, ऐसी क्रिया से मोक्ष को साधता है। इसके अतिरिक्त राग की क्रिया या शरीर की क्रिया वास्तव में आत्मा की क्रिया नहीं है, वह आत्मा की धर्मक्रिया से भिन्न है। जन्म-मरण के अन्त करने की क्रिया तो अन्तर के शुद्धोपयोग में समा जाती है। राग से पार अन्तर के चिदानन्दस्वभाव को जानकर धर्मी जीव शुद्धोपयोग से अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेता है, उसमें रागादि का स्वाद नहीं लेता, ऐसे स्वाद का अनुभव हो, तभी आत्मा को जानना कहलाता है, तभी धर्म और मोक्षमार्ग होता है। इसलिए सर्व प्रथम ऐसा आत्मज्ञान शीघ्र कर लेना उचित है। *[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-1 (मई-1971), वर्ष-27]*

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का नियमसार, गाथा 3 पर प्रवचन

कारण-कार्य की अपूर्व संधि सहित सुंदर मोक्षमार्ग

'नियम' अर्थात् अवश्य, मोक्ष के लिए जो अवश्य ही करने जैसा कार्य है, वह नियम है, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह नियम है। उसमें भी जो सार है, वह नियम-सार है अर्थात्, शुद्ध स्वाभाविक निर्विकल्प रत्नत्रय परिणति ही नियमसार है; वही निर्वाणरूप मोक्षसुख का कारण है अर्थात्, मोक्ष के लिए वह नियम से कर्तव्य है।

मोक्षार्थी जीव को मोक्ष के लिए ऐसा शुद्धरत्नत्रय प्रगट करना ही प्रयोजन है, वह किस प्रकार प्रगट हो? कि अन्तर में जो अनन्त चतुष्टय स्वभावरूप शुद्ध ज्ञानचेतनास्वरूप है, वह मोक्षमार्ग का कारण है; इसलिए उसे 'कारणनियम' कहते हैं, उसके आश्रय से 'कार्यनियम' रूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है। मोक्षमार्ग का, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करने के लिए अपने ऐसे स्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी का आश्रय नहीं है, अन्य कोई कारण नहीं है। यह शुद्ध कारण अपने में त्रिकाल है, उसमें अन्तर्मुख होकर उस कारण का सेवन करने पर कार्य प्रगट होता है अर्थात् मोक्षमार्ग होता है।

शुद्ध ज्ञानचेतना (जिसमें शक्ति का अनन्त चतुष्टय समा जाता है) जो त्रिकाल है, उसको चेतना-अनुभव करना, वही मोक्षमार्ग है। यह मोक्षमार्ग ही 'कार्यनियम' है, मोक्ष के लिए नियम से करनेयोग्य कार्य है, और उसके आश्रयभूत त्रिकाली शुद्धज्ञानचेतना, वह 'कारणनियम' है।

देखो! यहाँ कारण और कार्य की अलौकिक सन्धि है, ऐसे शुद्ध कारण और शुद्ध कार्य की सन्धि बतलाकर, बीच में से रागादि अशुद्ध कारण को निकालकर फेंक दिया; शुद्धरत्नत्रय का ही मोक्षमार्ग में स्वीकार करके व्यवहाररत्नत्रय भी निकाल डाला। अहो! ऐसा सुन्दर मार्ग आचार्यदेव ने इस नियमसार में प्रगट किया है। सुन्दर और सूक्ष्म मार्ग है। रागादिभाव

स्थूल हैं, उनसे रहित मार्ग है, इसलिए सूक्ष्म है और आनन्दरूप है, इसलिए सुन्दर है। सूक्ष्म होने पर भी स्वयं को स्वानुभवगम्य होने योग्य मार्ग है। मुमुक्षुओं ने इस मार्ग का ही अनुभव करके मोक्ष प्राप्त किया है।

गाथा में आचार्यदेव ने ऐसे मोक्षमार्गरूप कार्य को नियम से कर्तव्य कहा है, ('जो नियम से कर्तव्य ऐसे रत्नत्रय वह नियम है') और उसकी टीका में उस कार्य के साथ उसका त्रिकाली कारण भी बताकर मुनिराज ने कारण-कार्य की अद्भुत सन्धि की है। त्रिकाली शुद्धद्रव्य, वह कारण; उसके आश्रय से प्रगटी हुई शुद्धपर्याय, वह कार्य; जिसने शुद्ध कारण का स्वीकार किया, उसके शुद्धकार्य होता ही है अर्थात् मोक्षमार्ग प्रगट होता है; कार्य के बिना कारण का स्वीकार किया किसने? उपयोग के अत्यन्त अन्तर्मुख होने पर जब स्वभाव के आश्रय से मोक्षमार्गरूप कार्य प्रगट हुआ, तब धर्मी कहता है कि 'अहो! यह मेरे कार्य का कारण' इस प्रकार कारण की अपूर्व सन्धि सहित धर्मी जीव मोक्ष को साधता है।

सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र यह तीनों कार्य आनन्ददायक हैं, इनसे आनन्दसहित मोक्ष साधता है। अहो! अतीन्द्रिय सुख का साधनरूप यह श्रेष्ठ-सुन्दर शुद्ध रत्नत्रय कार्य, उसका कारण भी अपने में त्रिकाल है, उसे कारणनियम कहते हैं। वह कारण तो त्रिकाल है, उसे कहीं नवीन करना नहीं हैं; परन्तु उस कारण का स्वीकार करके उसके आश्रय से सम्यग्दर्शनादि कार्य प्रगट करना, वह निश्चय से करनेयोग्य कार्य है, उसे 'कार्यनियम' कहते हैं। यह कार्य ही मोक्ष का मार्ग है, और परम अतीन्द्रिय सुख की अनुभूति इस मार्ग का फल है। ऐसे सुन्दर मार्ग और मार्गफल को जानकर, अपने परम तत्त्व के सेवन से ही, मैं मोक्षसुख को प्राप्त करता हूँ, बीच में व्यवहार और विकल्प आवें, उन्हें मैं मोक्षमार्ग में स्वीकार नहीं करता; उन्हें छोड़कर परमात्मतत्त्व के आश्रय से ही मैं मोक्षसुख को साधता हूँ।

अहो, मोक्ष का मार्ग ही अन्तर में समाहित है, देव-गुरु की वाणी जहाँ पहुँचती नहीं, विकल्प का जहाँ प्रवेश नहीं, पर्याय का जिसमें आश्रय नहीं; अकेला अन्तर्मुख स्वभाव-आश्रित निरालम्बी मार्ग है। ऐसे सुन्दर मार्ग की साधना सन्त करते हैं और जगत को दिखलाते हैं।

अब मार्गरूप जो शुद्धरत्नत्रय-उनका प्रत्येक का स्वरूप कहते हैं:

मोक्षमार्ग में जो सम्यग्ज्ञान है—वह कैसा है ?

जिसमें परद्रव्य का जरा भी अवलम्बन नहीं, समग्र ही उपयोग सर्वथा अन्तर्मुख होकर अपने परम तत्त्व का परिणमन करता है और अन्तर में उसे उपादेय करता है—ऐसा ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान है और वही मोक्ष का साधन है। जो ज्ञानोपयोग अत्यन्त अन्तर्मुख होकर अपने शुद्ध ज्ञायकतत्त्व की उपासना करता है, वह ज्ञान ही मोक्ष का कारण है, वही नियम से कर्तव्य है। बहिर्मुख कोई भी विकल्प मोक्ष के लिए कर्तव्य नहीं हैं। इसलिए कहते हैं कि हे मोक्षार्थी जीवो! तुम उपयोग को अन्तर में लगाकर, स्वद्रव्य को शीघ्र ही ग्रहण करो और परद्रव्य को शीघ्र ही छोड़ो।

वाह! परमतत्त्व का परिज्ञान अन्तर्मुख उपयोग से होता है। इन्द्रियज्ञानरूप पर-सन्मुख उपयोग से परम तत्त्व का, सम्यग्ज्ञान नहीं होता। उपयोग को अन्तर्मुख करके स्वद्रव्य का अलम्बन लिया, उसमें परद्रव्य का किंचित् अवलम्बन नहीं है, ऐसे उपयोग से, आत्मा का सम्यग्ज्ञान होता है—ऐसा अन्तर्मुखी मोक्षमार्ग है।

उपयोग बहिर्मुख होकर पर का जो ज्ञान होता है, वह भी अपने से ही होता है; वह कहीं पर से नहीं हुआ है, किन्तु वह परावलम्बी ज्ञान होने के कारण मोक्ष को नहीं साध सकता। मोक्ष को साधनेवाला ज्ञान परद्रव्य के अवलम्बन से रहित है। देव-गुरु-शास्त्र या रागादि—इन सबसे पार अकेले शुद्धस्वरूप का ही अवलम्बन करनेवाला उपयोग मोक्ष को साधता है। सम्पूर्णरूप से अन्तर्मुख उपयोग ही मोक्ष का कारण होता है। अन्तर्मुख उपयोग भी मोक्ष का कारण हो और किंचित् बहिर्मुख उपयोग भी मोक्ष का कारण हो - ऐसा नहीं है; उपयोग में थोड़ा आत्मा का अवलम्बन और थोड़ा देव-गुरु-शास्त्र का अवलम्बन—ऐसे दो अवलम्बन नहीं हैं; अकेले

स्वद्रव्य का ही अवलम्बन है। बाहर का अवलम्बन जरा भी उसमें नहीं है, अर्थात् बहिर्मुख कोई भी भाव (शुभ या अशुभ) वह आत्मा को मोक्ष का साधन नहीं है। आत्मालम्बी वीतरागभाव अकेला ही मोक्ष का साधन है।

देखो तो सही, पर से अत्यन्त निरपेक्ष अन्तर्मुखी मोक्षमार्ग वीतराग सन्तों ने जगत में भव्य जीवों के मोक्ष के लिए प्रसिद्ध किया है। ऐसे अन्तर के अतीन्द्रिय मार्ग का निर्णय करके अन्दर स्वद्रव्य के आलम्बन का बार-बार प्रयोग करना चाहिए।

मोक्ष के हेतुरूप, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों में अखण्ड स्वद्रव्य ही आलम्बन है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र, ऐसे गुणभेद का आलम्बन नहीं है। परम तत्त्व कहो, शुद्ध जीवास्तिकाय कहो या कारणपरमात्मा कहो - ऐसा जो अपना ज्ञायकस्वभाव, उसके ही अन्तर्मुख अवलम्बन से सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है। उसमें सम्यग्ज्ञान का अन्तर्मुखपना बताया, अब सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाते हैं।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन है—वह कैसा है ?

प्रथम तो, सम्यग्दर्शन पानेवाला जीव कैसा है ? कि भगवान परमात्म-सुख का अभिलाषी है; अपने आत्मसुख के सिवा जगत में दूसरे किसी की अभिलाषा नहीं है; ऐसे जीव के शुद्ध अन्तर्तत्त्व के आनन्द का जन्मधाम ऐसा अपना शुद्ध जीवास्तिकाय द्रव्य—उसके अवलम्बन से जो श्रद्धा होती है, वह सम्यग्दर्शन है। सम्यक्श्रद्धा में अपने शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का अवलम्बन नहीं है। अन्दर में भी 'इस पर्याय से इस द्रव्य को पकडूँ' - ऐसा भेद नहीं है। स्वद्रव्य का अवलम्बन हुआ, वहाँ शुद्धपर्याय वर्तती ही है।

अहा, मेरे आनन्द के विलास का धाम तो मेरा आत्मा है; मेरे आत्मा में ही अतीन्द्रिय आनन्द का उद्भव होता है; अत: आनन्द का जन्मधाम मेरा

आत्मा ही है। इस प्रकार अन्तर्दृष्टि से प्रतीति करना ही सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन के साथ ही आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का जन्म होता है; सम्यग्दर्शन होते ही आनन्द का जन्म हुआ... आत्मा में से आनन्दपुत्र का अवतार हुआ। अपने लिए जगत में धर्मी जीव को दूसरे किसी की अपेक्षा नहीं है। जिस प्रकार समुद्र स्वयं अपने में डोलता है, उसी प्रकार धर्मी स्वयं अपने आनन्द-समुद्र में आनन्द का अनुभव करता है। कस्तूरी मृग की तरह अज्ञानी बाहर में अपना आनन्द खोजता है, धर्मी तो जानता है कि मेरा असंख्यप्रदेशी आत्मा ही मेरे आनन्द की उत्पत्ति का स्थान है, मेरे आत्मा में ही आनन्द भरा है। इस प्रकार अत्यन्त अन्तर्मुख होकर अपने शुद्धस्वभाव की निर्विकल्प प्रतीति, वही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन आनन्द की अनुभूतिसहित प्रगट होता है, इसलिए उसके साथ आनन्द के जन्म की बात ली है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आनन्दरूप हैं। सम्यग्दृष्टि ने अपना सुख अपने में अनुभव कर लिया है, अपना सर्वस्व अपने में देख लिया है, 'शुद्धबुद्ध चैतन्यघन स्वयंज्योति सुखधाम' - इस तरह स्वाश्रित सुन्दर मोक्षमार्ग के सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन की बात की, अब सम्यक्चारित्र की बात करते हैं।

मोक्ष के कारणरूप सुन्दर चारित्र है—वह कैसा है ?

'सुन्दर' अर्थात् वीतराग; सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र, यह तीनों वीतराग हैं, और वीतराग हैं; इसलिए सुन्दर हैं। निश्चय ज्ञान-दर्शनस्वरूप जो कारणपरमात्मा है, उसकी श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक उसमें अविचल स्थिति, वही चारित्र है। उसमें राग नहीं है; ऐसा चारित्र मोक्ष के लिए कर्तव्य है। स्वरूप में लीनतारूप वीतरागचारित्र को नियम कहा परन्तु शुभराग-पंचमहाव्रतादि विकल्पों को नियम नहीं कहा अर्थात् मोक्ष के लिए वीतरागचारित्र को ही कारण कहा, शुभ को कारण नहीं कहा। रत्नत्रयरूप जो ऐसा सुन्दर मार्ग है, वह परम निरपेक्ष है और राग के अभाव से वह शुद्ध

है; ऐसे शुद्ध रत्नत्रय को नियम-सार कहते हैं, और वह नियम से कर्तव्य है।

रागरहित शुद्धरत्नत्रय, वही सुन्दर है और वही उत्तम है। रागरूप व्यवहाररत्नत्रय कहीं सार नहीं है-श्रेष्ठ नहीं है, कर्तव्य नहीं है; इसलिए रत्नत्रय के साथ 'सार' विशेषण लगाकर उन सभी विपरीत भावों का परिहार किया है। विपरीतभाव से रहित अर्थात् रागरहित ऐसा जो शुद्ध सारभूत-निर्विकल्प-वीतरागी रत्नत्रय, वही मोक्ष का साक्षात् कारण होने से मुमुक्षु का कर्तव्य है, उसी से अतीन्द्रिय मोक्षसुख प्राप्त होता है।

अहो, मोक्ष का कारण तो शुद्ध रत्नत्रय है, और वह रत्नत्रय अन्तर्मुख आत्मा के ही आश्रय से होता है। जिसमें किसी दूसरे का अवलम्बन नहीं है, ऐसे उपयोग को अत्यन्त अन्तर्मुख करके अपने परम तत्त्व को जाना, परम-आत्मसुख का ही अभिलाषी होकर अन्तर में आनन्द का धाम ऐसे अपने शुद्धजीव की परम श्रद्धा की, और उसी कारणपरमात्मा में स्थिरता की - ऐसे शुद्ध रत्नत्रय में कहीं भी राग नहीं आया, परद्रव्य का अवलम्बन भी नहीं आया, अकेले स्व-द्रव्य के ही अवलम्बन से ऐसा शुद्धरत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग है, और वही भव के नाश के लिये भव्य जीवों को करनेयोग्य है। इसलिए मुनिराज कहते हैं कि—

इसप्रकार विपरीतता रहित निर्विकल्प सर्वश्रेष्ठ और सुन्दर ऐसे शुद्ध रत्नत्रय को प्रगट करके मोक्ष के परम अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता हूँ... तुम भी ऐसा अनुभव करो।

वाह! कैसा सुन्दर मार्ग, और कैसा उत्तम उसका फल, ऐसे शुद्ध मार्ग और उसके उत्तम फल का स्वरूप वीतरागी सन्तों ने भव्यजीवों के परमानन्द के लिए प्रगट किया है।

[नमस्कार हो उन सन्तों को और उस सुन्दर मार्ग को!]

[आत्मधर्म (हिन्दी), अंक-1 (मई-1971), वर्ष-27]

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का पद्मनन्दि पंचविंशति पर प्रवचन

ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां तेषां धिक् च गृहाश्रमम्॥15॥

भाई! आचार्यों को ऐसा! वे तो वस्तु के स्वरूप का वर्णन करते हैं। अरे! परन्तु परमात्मा की भक्ति और तेरे स्तवन। किन्तु जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान को भक्ति से नहीं देखते हैं... भगवान की मूर्ति, प्रतिमा... 'जिनप्रतिमा जिनसारखी कही आगम मांही' बनारसीदास तो कहते हैं। समझ में आया? 'जिनप्रतिमा जिनसारखी,... अल्पभव स्थिति जाकी सोही प्रमाणै जिनप्रतिमा जिनसारखी' समयसार नाटक में है, समयसार नाटक है न? बनारसीदास। 'कहत बनारसी अल्पभव स्थिति जाकी' अर्थात् दृष्टि का भान है और उसे भगवान... 'कहत बनारसी अल्पभव स्थिति जाकी सोही प्रमाणै जिनप्रतिमा जिनसारखी' भगवान साक्षात् विराजते हैं — ऐसा उसे आल्हाद और भक्ति व वात्सल्य आये बिना नहीं रहता है। समझ में आया?

मूर्ति नहीं माननेवाले के लिये यह बहुत विरुद्ध है। वे कहते हैं — हम भले ही मूर्ति नहीं मानें। कहाँ स्तुति (कही है)? कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने तो व्यवहार स्तुति का निषेध किया है। एक जितेन्द्रिय हो, उसे ऐसा निश्चय हो, उसे स्तुति कहा है, यह दृष्टान्त देते हैं। इसलिए भगवान की मूर्ति और पूजा-बूजा की बात कुछ समयसार में नहीं लगती। अरे...! सुन न! इनके घर का तुझे क्या पता पड़े? निश्चय की बात लेने जाये तो यह ले अन्दर। भगवान की मूर्ति और पूजा (नहीं)।

हमने पूरा तत्त्वार्थसूत्र देखा, एक व्यक्ति कहता था, समझे न? यह उमास्वामी का पूरा तत्त्वार्थसूत्र देखा परन्तु उसमें कहीं मूर्ति नहीं। परन्तु यह चार निक्षेप नहीं उसमें? नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव सबमें उतारे हैं। सातों तत्त्वों में, अरिहन्त में, सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में और सम्यक्चारित्र में, सबमें ऐसे चार निक्षेप उतारे हैं। पूरा तत्त्वार्थसूत्र देखा, ऐसा वाचाल बोले, उसमें कहीं मूर्ति नहीं, हों! यह तो कौन जाने लेकर कहाँ से पड़े हैं।

यहाँ यह मानस्तम्भ की मूर्ति देखकर बाहर से ऐसे चले जाते थे और कहे यह मूर्ति-वूर्ति शास्त्र में कुछ नहीं, हमने शास्त्र में सब तत्त्वार्थसूत्र भी पूरा देखा है। बहुत अच्छा, आहाहा! अरे भाई! तुझे अभी व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे निश्चयश्रद्धा की भूमिका में वास्तविक प्रतिमा, उसके नय, व्यवहारनय का विषय-निक्षेप है, वह आये बिना नहीं रहता। कहो, समझ में आया?

कहते हैं जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान को भक्ति से नहीं देखते हैं और न उनकी भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति ही करते हैं.... भगवान, मूर्ति विराजते हों और ऐसे के ऐसे पैर लगे बिना (वन्दन किये बिना) चला जाये तो वह अनादर करनेवाला, असातना करनेवाला है। समझ में आया? कि हम तो मानते हैं, चार निक्षेप मानते हैं, निक्षेप मानते हैं परन्तु वन्दन-वन्दन नहीं। वह निक्षेप को ही नहीं मानता। समझ में आया?

शास्त्र में आता है कि महामुनि ध्यान में हों, ऊपर से विमान निकला हो, वन्दन किये बिना चले तो विमान रुक जाता है, विमान रुक जाता है! यह इसका ऐसा हुआ था न उसमें? क्या? यह पार्श्वनाथ भगवान, कमठ का। पार्श्वनाथ भगवान ध्यान में (बैठे थे) और ऊपर, ऐसा देखा-यह कौन? मेरा विमान रोक दिया। वह तो ऐसा देखता है कि ओहो! वन्दन योग्य (महामुनि) नीचे विराजते हैं, उन्हें उल्लंघकर नहीं जाया जाता — ऐसा सहज नियम है। उन्हें वन्दन और भक्ति-पूजन किये बिना नहीं जाया जाता — ऐसा कुदरत के साथ इसका सम्बन्ध है, ऐसा न लेकर विरोध किया। नीचे उतरकर पानी डाला और पत्थर डाले और अग्नि (जलायी)। ज्वाला ज्वाला के स्थान... भगवान तो ध्यान में मस्त (रहे) धरणेन्द्र, पद्मावती (आये) यह तो इस प्रकार का पुण्य का योग था। केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले हैं, वे कहीं उसके परिषह से मर जायें या देह छूट जाये, ऐसा था नहीं। धरणेन्द्र आया... समझ में आया? और पद्मावतीदेवी, दोनों ने आकर भगवान... ऐसी भक्ति धरणेन्द्र को वहाँ उछली। कहाँ धरणेन्द्र भुवनपति में और कहाँ भगवान यहाँ! परन्तु ऐसा भक्ति का भाव (आया)। कहीं प्रतिकूलता हुई भगवान को, आसन कम्पित हुआ, कुछ फेरफार है, ऐसा

उपयोग लगाता है। ओहो! पार्श्वनाथ भगवान को कमठ उपसर्ग करता है... इसी-इसी में ध्यान करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए उपसर्ग छूट गया।

कहते हैं जो मनुष्य, भगवान वीतराग त्रिलोकनाथ की भक्ति नहीं करते, पूजा नहीं करते और न उनकी भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति ही करते हैं, उन मनुष्यों का जीवन संसार में निष्फल है तथा उनके गृहस्थाश्रम के लिए भी धिक्कार है। आचार्य कहते हैं-धिक्कार है। आप तो वीतराग हो न? अब सुन न! मुनि, महात्मा, दिगम्बर सन्त, भावलिंगी, वीतराग पद में विराजते हैं, वे कहते हैं, अरे! गृहस्थाश्रमी! त्रिलोक के नाथ की मूर्ति को प्रतिमा को उल्लंघकर तू मानता नहीं, पैर लगता नहीं, स्तुति करता नहीं, पूजा करता नहीं, तेरे गृहस्थाश्रम को (धिक्कार है), यह दूसरी जगह दान अधिकार में आता है। इसमें नहीं। समझ में आया?

जिस गृहस्थाश्रम में भगवान की भक्ति नहीं, दान नहीं प्रतिदिन, पूजा नहीं ऐसे गृहस्थाश्रम को गहरे पानी में लेकर उसे होम दे, अंजुलि दे दे, ऐसे गृहस्थाश्रम को। नरक के स्थान के लिये ऐसा गृहस्थाश्रम? जहाँ भगवान की भक्ति नहीं, जहाँ धर्मात्मा का आदर नहीं, जहाँ धर्मात्मा आवे उनका आहार-पानी का सत्कार नहीं और हमेशा दान आदि का भाव नहीं — ऐसे विषमजालवाला घर गहरे पानी में लेकर उसे अंजुलि दे दे, कहते हैं। पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं। समझ में आया? दान अधिकार में बहुत आयेगा। दान अधिकार में आता है। ऐसे गृहस्थाश्रम को गहरे गहन पानी में डुबा देना। तेरा गृहस्थाश्रम नरक में ले जाये, किस काम का? कहते हैं। समझ में आया?

व्यवहार है या नहीं? सोनगढ़वाले व्यवहार उड़ाते हैं। अरे..! सुन तो सही! व्यवहार के स्थान में व्यवहार बराबर है। व्यवहार न हो — ऐसा नहीं हो सकता परन्तु उसे पाप से बचनेमात्र शुभभाव लोकोत्तर दूसरे प्रकार का होता है परन्तु उसका फल अनुकूल संयोग है, महा इन्द्र पूजा करे — ऐसा संयोग फले इतनी उसकी मर्यादा है और ऐसी मर्यादा उसे आये बिना नहीं रहती। जब तक वीतरागपना न प्रगटे, तब तक गृहस्थाश्रम में चारित्र ही नहीं और चारित्र के बिना केवलज्ञान हो नहीं सकता। गृहस्थाश्रम में केवलज्ञान कभी होता नहीं। गृहस्थाश्रम में रहा, पाँचवें गुणस्थान में किसी को केवलज्ञान हो — ऐसा तीन काल में नहीं होता।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव

श्री आचार्यदेव अर्हद्बलि अपरनाम गुप्तिगुप्त

पूर्वदेशस्य पुण्ड्रवर्धन के निवासी आचार्यवर अर्हद्बलि बहुत बड़े संघनायक थे। आचार्य इन्द्रनन्दिकृत 'श्रुतावतार' नामक ग्रन्थ की गुरुपरम्परा में आचार्यवर लोहार्य का नाम व उनकी परम्परा में अंगज्ञान व पूर्वज्ञान के एकदेशज्ञाता आचार्य विनयदत्त, श्रीदत्त, शिवदत्त व अर्हदत्त के पश्चात् आचार्य अर्हद्बलि का नाम आता है। आपका नामोल्लेख आचार्य गुप्तिगुप्त के रूप में भी आता है।

आपके संघनायकत्व में पंच वर्षीय युगप्रतिक्रमण के वक्त एक बड़ा भारी यति-सम्मेलन हुआ। इसमें सौ-सौ योजन तक के यति सम्मिलित हुए थे। यह सम्मेलन आन्ध्रदेश के अन्तर्गत वेणाक[1] नदी के तीर पर आये महिमानगर[1] में हुआ था।

अंग ज्ञान के विच्छेद होने के पश्चात् कोई भी आचार्य, किसी पूरे अंग के ज्ञाता नहीं रहे। जीवों के भाग्यवशात्, आपके व तद्वर्ती आचार्यों की परम्परा में, कुछ वर्षों तक अंगों या पूर्वों के एकदेश ज्ञाता वर्तते रहे, परन्तु दुषमकाल की स्थिति से आचार्य अर्हद्बलि को संघ संचालन हेतु विविध संघ करने की जरूरत महसूस होने लगी।

यतियों में कुछ पक्षपात की गन्ध देखकर, आपने गौतम गणधर भगवन्त से चले आ रहे, मूलसंघ को पृथक्-पृथक् [2]नन्दि, वीर, अपराजित, देव, पंचस्तूप, सेन, भद्र, गुणधर, गुप्त, सिंह, चन्द्र आदि विविध नामों युक्त संघों की स्थापना की थी। जिससे परस्पर में धर्मवात्सल्यभाव वृद्धिगत हो सके।

---

1. वेण्या नामक नदी महाराष्ट्र प्रान्त के सतारा जिले में है और इसी जिले में महिमानगढ़ नाम का एक गाँव भी विद्यमान है। वह ही महिमानगरी होना चाहिए। इससे अनुमानतः इसी सतारा जिले में मुनियों का सम्मेलन हुआ था।
2. श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव इसी नन्दिसंघ के थे।

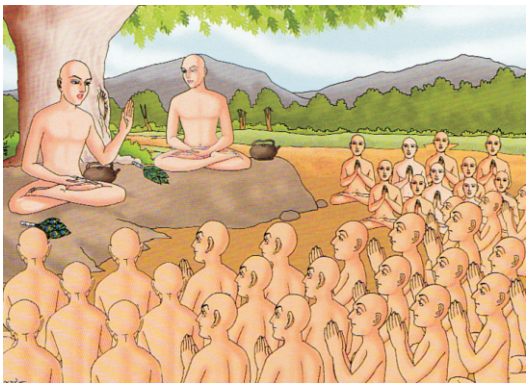

आचार्य धरसेन जब गिरिनगर की चन्द्रगुफा में विराजित थे। उस समय उन्होंने इसी यति सम्मेलन में दो समर्थ मुनिभगवन्त को भेजने के समाचार आचार्यवर अर्हद्बलि को भेजे थे। उस समाचार के आधार से ही, आपने उस सम्मेलन में आये आचार्य पुष्पदन्त व आचार्य भूतबलि को, आचार्य धरसेन भगवन्त के पास गिरिनगर में उनके सेवार्थ भेजे थे।

श्रवणबेलगोला के एक शिलालेख के आधार से यह पता चलता है, कि आचार्य पुष्पदन्त व भूतबलि दोनों ने आचार्य अर्हद्बलि से ही दीक्षा ग्रहण की थी। अत: आप आचार्य पुष्पदन्त व आचार्य भूतबलि के दीक्षागुरु थे।

आपके काल तक प्राय: लेखित ग्रन्थ रचना नहीं होती थी। मौखिक ही अंगादि का ज्ञान प्रदान होता था। ग्रन्थ रचना की स्थिति आपके पश्चात् प्राय: पुष्पदन्त व भूतबलि आचार्य से ही ज्ञान की क्षीणता के कारण शुरु हुई। अत: आपने किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की है। आप अंगज्ञान के एकदेशज्ञाता होने पर भी संघभेद निर्माता होने के कारण आपका नाम श्रुतधरों की परम्परा में नहीं आता है, फिर भी श्रुतावतार में आपका नाम बड़ी श्रद्धा से लिया गया है।

विद्वानों के मतानुसार आपका काल वी. नि. 565-593 (ई.स. 38-66) माना जाता है। आपके समय की इस अवधि में से प्रथम 10 वर्ष मूलसंघ के हैं, व पश्चात् के वर्ष मूलसंघ विच्छेद बाद के हैं। आचार्यवर अर्हद्बलि भगवन्त को कोटि-कोटि वन्दन।

साभार-भगवान महावीर की आचार्य परम्परा से

कोरा शास्त्रज्ञान केवल बोझा है

विजयभानु सब विद्याओं एवं कलाओं में निपुण होकर आचार्य अजितवीर्य के पास पहुँच विनम्र होकर बोला – गुरुवर्य ! मैं जगत की सेवा करना चाहता हूँ। आप चाहे जहाँ भेज दें। आचार्यश्री कुछ हँसे और बोले – जगत को कुछ देने के पहले अपने पास भी वह माल होना चाहिए।

विजयभानु ने कहा – मैं सभी विद्याओं और संगीत, गान, नृत्य, चित्रांकन आदि सभी कलाओं में पूर्ण निष्णात हो गया हूँ। आचार्यश्री ने कहा – विद्याएँ और कलाएँ ये कोरा शाब्दिक ज्ञान नहीं किन्तु ये जीवन की साज सज्जाएँ हैं। यदि इनसे जीवन नहीं सजाया गया तो फिर ये गर्दभ पर लदे हुए आभूषण की तरह व्यर्थ हैं। हम देखेंगे इन विद्याओं का और कलाओं का आपके जीवन में कितना कौन–सा सम्बन्ध है ?

दूसरे दिन एक व्यक्ति वियजभानु के पास पहुँचा और उन्हें खरी खोटी सुनाने लगा। कुछ देर तक सुनने के बाद विजय आपे से बाहर हो गया। वह आदमी चला गया।

एक दिन राजा के दूत ने आकर विजय से कहा – सम्राट हर्ष ने आपको राजमन्त्री बनने के लिए आमन्त्रित किया है। विजयभानु ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। थोड़ी देर के पश्चात् एक सुन्दर स्त्री ने आकर विजय की बहुत प्रशंसा की। विजय उस स्त्री के सौन्दर्य को एकटक देखते ही रह गया।

विजय फिर एक दिन आचार्यश्री के पास पहुँचा, तो आचार्यश्री ने कहा – वत्स, क्या तुमने काम, क्रोध और लोभ को जीतनेवाली विद्याएँ भी सीखी हैं ? यदि ये विद्याएँ नहीं सिखी तो अन्य सभी विद्याएँ गधे का बोझ हैं।

विजयभानु को वे तीनों घटनाएँ याद आ गईं, जिन तीनों घटनाओं में

वह पराजित हो चुका था। वह देर तक सोचकर बोला - गुरुदेव, सचमुच, मैं काम, क्रोध और लोभ को जीतने में असमर्थ रहा हूँ। आप ही बताइए अब इनको कैसे जीत सकता हूँ ? आचार्यश्री ने कहा - यदि वृक्ष उत्पन्न होगा तो उसकी डालियाँ, पत्ते आदि अवश्य उत्पन्न होंगे ही। इसी प्रकार शास्त्रज्ञान के साथ भावश्रुतज्ञान होगा तो जीवन में विषय-कषाय और पापों की हीनता होगी ही। यदि विषय-कषायों की हीनता नहीं हुई तो समझो अभी तक पाप भाव ही मन्द नहीं हुआ तो पापों की तीव्रता में विषय-कषाय कैसे मन्द हो सकते हैं ? आत्मतत्त्व की सच्ची रुचि होने पर ही तो विषय-कषाय की रुचि घटती है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। विजयभानु अपनी असली साधना को सफल बनाने के लिए गुरु के द्वारा प्रदर्शित, आत्मा की शक्ति-सामर्थ्य से साक्षात्कार करने के लिए अपने स्वभाव के प्रति समर्पित हो गया।

सन्मति-सन्देश, वर्ष-48, अंक-8

तब सम्यग्दर्शन हुआ

परम आत्मतत्त्व की अनुभूति में 'मैं द्रव्य हूँ या मैं पर्याय हूँ' ऐसा भेद नहीं रहता, वहाँ द्वैत नहीं, विकल्प नहीं, पक्षपात नहीं। पहले अनुभव के प्रयत्न-काल में, जो-जो विकल्प थे; व्यवहार से, जो साधक कहलाते थे, वे ही अनुभव के समय बाधक होते हैं, अर्थात् साक्षात् अनुभवदशा के समय कोई विकल्प नहीं होते। विकल्पों का लोप होकर, एक परम तत्त्व ही प्रकाशमान रहात है; नय-निक्षेप-प्रमाण के सर्व विकल्प निर्वंश हो जाते हैं। अहा! ऐसी अनुभूति हुई, तब सम्यग्दर्शन हुआ। आत्मा के ऐसे अनुभव बिना कोई कहे कि हमें सम्यग्दर्शन हो गया है—तो वह मात्र भ्रम ही है। सम्यग्दर्शन-परिणति राग-द्वेष-मोह के विकल्पों से सर्वथा भिन्न है, वह मोह का पर्दा फाड़कर अन्दर चैतन्य में प्रवेश कर गई है।

उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला

जिनेन्द्र की श्रद्धा की महिमा

जइ ण कुणसि तवयरणं, ण पढसि ण गुणसि ददासि णो दाणं।
ता इत्तियं ण सक्कसि, जं देवो इक्क अरिहन्तो॥2॥

अर्थ – हे भाई! यदि अपनी शक्ति की हीनता के कारण तू तपश्चरण नहीं करता है, विशेष अध्ययन नहीं करता है, न ही विचार करता है तथा दान भी नहीं करता है तो ये सब कार्य तू भले ही मत कर परन्तु एक सर्वज्ञ वीतराग देव की श्रद्धा तो दृढ़ रख क्योंकि जिस कार्य को करने के लिए अकेले एक अरहन्तदेव समर्थ हैं, उस कार्य को करने के लिए ये तपश्चरणादि कोई भी समर्थ नहीं है।

भावार्थ – जो पुरुष अपनी शक्ति की हीनता के कारण तपश्चरण आदि तो नहीं करता है परन्तु 'भगवान अरहन्त देव ने जो कहा है वह ही सत्यार्थ है' – इस प्रकार अरिहन्त भगवान के मत का श्रद्धान करता है, वह पुरुष मोक्षमार्गी ही है और अरिहन्त भगवान के मत की श्रद्धा किये बिना यदि घोर तपश्चरणादि करे तो भी विशेष फल नहीं मिलता इसलिए जितनी अपनी शक्ति हो उतना कार्य करना और जिस कार्य को करने की शक्ति नहीं हो, उसका श्रद्धान करना। श्रद्धान ही मुख्य धर्म है – ऐसा जानना॥2॥

कुदेवों को नमन करनेवाला ठगाया गया

रे जीव! भव दुहाइं, इक्कु चिय हरइ जिणमयं धम्मं।
इयराणं पणमंतो, सुह कज्जे मूढ! मुसिओसि॥3॥

अर्थ – रे जीव! जिनेन्द्रभाषित धर्म अकेला ही संसार के समस्त दु:खों को हरनेवाला है। इसलिए हे मूढ़मति! सुख के लिए अन्य सराग देवों को नमस्कार करता हुआ तू ठगाया गया है।

भावार्थ – समस्त सुखों का कारण ऐसा जो जिनप्रणीत धर्म उसे प्राप्त करके भी जो मूर्ख प्राणी सुख के लिए अन्य सरागी देवों को पूजता है, वह

अपनी गाँठ के सुख को तो खो देता है और मिथ्यात्वादि के योग से पाप बन्ध करके नरकादि से उल्टे दु:ख ही भोगता है ॥3 ॥

मृत्यु से रक्षक एक सम्यक्त्व ही है

देवेहिं-दाणवेहिं ण, सुउ मरणाउ रक्खिओ कोवि।
दिढकाय जिण सम्मत्तं, बहुविह अजरामरं पत्ता ॥4 ॥

अर्थ - देव अर्थात् कल्पवासी देव और दानव अर्थात् भवनत्रिक - इनके द्वारा किसी जीव की मृत्यु से रक्षा हुई हो ऐसा आज तक सुनने में नहीं आया है परन्तु जिन्होंने जिनराज का सम्यक्त्वरूप श्रद्धान दृढ़ किया है ऐसे अनेक ही जीवों ने अजर-अमर पद पाया है।

भावार्थ - इस जीव को समस्त भयों में मरण भय सबसे बड़ा भय है, उसे दूर करने के लिये ये सरागी देवादि को पूजता है परन्तु कोई भी देव इसे मृत्यु से बचाने में समर्थ नहीं इसलिए सरागियों को पूजना-वन्दना मिथ्याभाव है और राग-द्वेष रहित सर्वज्ञ अरिहन्तदेव के श्रद्धान से मोक्ष की प्राप्ति होती है, जिसमें यह जीव सदैव अविनाशी सुख भोगता है, इसलिए जिनेन्द्र भगवान ही मरण का भय निवारण करते हैं-ऐसा जानना ॥4 ॥

मिथ्यात्व की महिमा

जह कुवि वेस्सारत्तो, मुसिज्जमाणो वि मण्णए हरसं।
तह मिच्छवेस मुसिया, गयं पि ण मुणंति धम्मणिहिं ॥5 ॥

अर्थ - जैसे कोई वेश्यासक्त पुरुष अपना धन ठगाता हुआ भी हर्ष मानता है, वैसे ही मिथ्या वेषधारियों द्वारा ठगाते हुए जीव अपनी धर्मरूपी निधि के नष्ट होते हुए भी इस बात को मानते नहीं हैं, जानते नहीं हैं।

भावार्थ - जिस प्रकार कोई वेश्यासक्त पुरुष तीव्र राग के उदय से अपना धन ठगाता हुआ भी हर्ष मानता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि जीव भी मिथ्यावेष के धारकों को धर्म के लिये हर्षित होकर पूजता है, नमस्कार आदि करता है और उससे सम्यग्दर्शनधर्म रूपी निधि

की जो हानि होती है, उसे वह जानता ही नहीं है - यह सब मिथ्यात्व की महिमा है ॥5॥

आगे कोई कहता है कि 'हमारे तो इन मिथ्या वेषधारियों की सेवा कुलक्रम से चली आ रही है अथवा सारा लोक इनका सेवन करता है सो हम कुलधर्म को कैसे छोड़ दें ?' उन्हें आचार्य समझाते हैं:-

लोकप्रवाह तथा कुलक्रम में धर्म नहीं

लोयपवाहे सकुले, कम्मम्मि जइ होदु मूढ धम्मुत्ति।
तो मिच्छाण वि धम्मो, धकाई अहम्म-परिवाडी ॥6॥

अर्थ - हे मूढ़! यदि लोकप्रवाह अर्थात् अज्ञानी जीवों द्वारा माने हुई आचरण में तथा अपने कुलक्रम में ही धर्म हो तो म्लेच्छों के कुल में चली आई हुई हिंसा भी धर्म कहलायेगी तब फिर अधर्म की परिपाटी कौन-सी ठहरेगी!

भावार्थ - लोकप्रवाह तथा कुलक्रम में धर्म नहीं है, धर्म तो जिनवर कथित वीतराग भावरूप है, सो यदि अपने कुल में सच्चा जिनधर्म भी चला आ रहा हो परन्तु उसे कुलक्रम जानकर सेवन करे तो वह भी विशेष फल का दाता नहीं है। इसलिए जिनवाणी के अनुसार परीक्षापूर्वक निर्णय करके ही धर्म को धारण करना योग्य है ॥6॥

न्याय कभी कुलक्रम से नहीं होता

लोयम्मि रायणीई, णायं ण कुल-कम्मम्मि कय आवि।
किं पुण तिलोयपहुणो, जिणिंद धम्माहि गारम्मि ॥7॥

अर्थ - लोक में भी राजनीति है कि न्याय कभी कुलक्रम से नहीं होता तो फिर क्या तीन लोक के प्रभु जो अरहन्त परमात्मा हैं, उनके धर्म में न्याय कुलक्रम के अनुसार होगा अर्थात् कभी भी नहीं होगा।

भावार्थ - लोक रीति ऐसी है कि राजा भी कुलक्रम के अनुसार न्याय नहीं करता। जैसे, कोई बड़े कुल का मनुष्य हो और वह चोरी आदि अन्याय करे तो राजा उसे दण्ड ही देता है तब फिर विचार करो कि ऐसे अलौकिक

उत्कृष्ट जैनधर्म में कुलक्रम के अनुसार न्याय कैसे होगा अर्थात् कभी नहीं होगा। यदि कोई बड़े आचार्यों के कुल का नाम करके पाप कार्य करेगा तो वह पापी ही है, गुरु नहीं – ऐसा जानना। ऐसे को गुरु मानना सर्वथा मिथ्यात्व का ही प्रभाव है ॥7 ॥

कुगुरु के निकट वैराग्य की असम्भवता

जिणवयण वियत्तूण वि, जीवाणं जं ण होइ भव-विरई।
ता कह अवियत्तूण वि, मिच्छत्त हयाण पासम्मि ॥8 ॥

अर्थ – जब जिनवचनों को जानकर भी जीवों को संसार से उदासीनता नहीं होती, तब फिर जिनवचनों से रहित मिथ्यात्व से मारे हुए जो कुगुरु हैं, उनके निकट संसार से उदासीनता कैसे होगी अर्थात् नहीं होगी।

भावार्थ – कितने ही अज्ञानी जीव संसार से छूटने के लिये कुगुरुओं का सेवन करते हैं, उनको कहते हैं कि 'वीतराग भाव के पोषक जो जिनवचन हैं, उन्हें जानकर भी कार्म के उदयवश संसार से उदासीनता नहीं उत्पन्न होती है तो फिर राग-द्वेष एवं मिथ्यात्वादि को पुष्ट करनेवाले जो परिग्रहधारी कुगुरु हैं, उनके निकट रहने से वैराग्य कैसे उत्पन्न होगा अर्थात् कभी उत्पन्न नहीं होगा अतएव कुगुरु को दूर ही से त्याग देना चाहिए' ॥8 ॥

संयमी का सन्ताप

विरयाणं अविरइए, जीवो दद्दूण होइ मणतावो।
हा! हा! कह भव-कूवे, वूडंता पिच्छ णच्चंति ॥9 ॥

अर्थ – असंयमी जीवों को देखकर संयमी जीवों के मन में बड़ा सन्ताप होता है कि 'हाय! हाय!! देखो तो, संसाररूपी कुएँ में डूबते हुए भी, ये जीव कैसे नाच रहे हैं!'

भावार्थ – मिथ्यात्व व कषाय के वशीभूत हुए अज्ञानी जीव संसार भ्रमण के कारणरूप कर्म को हँस-हँसकर बाँधते हैं। उन्हें देखकर श्री गुरुओं के हृदय में करुणा भाव उत्पन्न होता है कि 'ये जीव ऐसा कार्य क्यों करते हैं, वीतरागी होने का उपाय क्यों नहीं करते!' ॥9 ॥

समाचार-दर्शन

नागपुर में सम्पन्न हुआ

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आदर्शरूप

नागपुर : 24 नवम्बर से 29 नवम्बर 2017 तक नागपुर, इम्प्रेस सिटी में श्री 1008आदिनाथ पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महा-महोत्सव, लघु एवं आदर्शरूप से प्रस्तुत हुआ। इस महा-महोत्सव के प्रतिष्ठाचार्य बालब्रह्मचारी अभिनन्दन शास्त्री, खनियांधाना; निदेशक श्री विपिन शास्त्री, नागपुर; मंच संचालन पण्डित संजय शास्त्री, मङ्गलायतन एवं मार्गदर्शक डॉ. राकेश शास्त्री नागपुर थे।

महा-महोत्सव में ज्ञानगंगा बहाने हेतु डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर; डॉ. उत्तमचन्दजी, छिन्दवाड़ा; डॉ. संजीव गोधा, जयपुर आदि एवं सभी स्थानीय विद्वान का सान्निध्य प्राप्त हुआ। महोत्सव का कुशल संयोजन श्री नरेश जैन, एम्प्रेस सिटी ने किया।

सम्पूर्ण महोत्सव में प्रदर्शन की मुख्यता न होते हुए तत्त्वज्ञान की मुख्यता रही। मात्र जन्मकल्याणक के दिन एक शोभायात्रा ही मुख्य रही। बाकी अत्यन्त लघु शोभायात्राओं द्वारा काम चलाया गया। अत्यन्त अल्प समय में बोलियाँ समाप्त की गयीं। प्रतिदिन डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, डॉ. उत्तमचन्दजी, डॉ. संजीव गोधा के प्रवचन बिना अन्तराय के हुए। 60 फीट की एलईडी पर प्रतिदिन पूज्य गुरुदेवश्री के विडियो प्रवचन, उज्जैन मण्डल द्वारा 'बाहुबली का वैराग्य' एवं पण्डित संयम शास्त्री द्वारा 'सीधी बात' कार्यक्रम बहुत ही आकर्षक रहा। इस महान ज्ञानयज्ञ में विभिन्न स्थानों से बीस से अधिक ब्रह्मचारिणी बहिनों का आगमन बहुत ही शुभ रहा। पण्डित संजय शास्त्री का तत्त्वज्ञान भरा एवं मनमोहक संचालन आकर्षण का केन्द्र रहा। प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी अभिनन्दन शास्त्री ने परमपवित्रता के साथ शुद्धविधिपूर्वक सम्पूर्ण कार्यक्रम सम्पन्न कराया।

इतवारी मुमुक्षु मण्डल ट्रस्ट का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ एवं सकल दिगम्बर जैन समाज नागपुर ने प्रतिष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

चिर-प्रतीक्षित, शाश्वत्धाम उदयपुर में

ऐतिहासिक पंच कल्याणक प्रतिष्ठा
महा-महोत्सव सानन्द सम्पन्न

उदयपुर : 2 दिसम्बर से 7 दिसम्बर 2017 तक, चिर-प्रतीक्षित पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महा-महोत्सव, शाश्वत्धाम उदयपुर में, ऐतिहासिक उपलब्धियों के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। इस महान ज्ञानयज्ञ के प्रतिष्ठाचार्य ब्रह्मचारी जतीशभाई; निदेशक

पण्डित रजनीभाई हिम्मतनगर एवं मंच संचालक पण्डित अभयकुमार शास्त्री, देवलाली; पण्डित संजय शास्त्री, मंगलायतन रहे। सह प्रतिष्ठाचार्य पण्डित ऋषभ शास्त्री, छिन्दवाड़ा; पण्डित अजित शास्त्री, अलवर; पण्डित मनीष शास्त्री, पिड़ावा; ब्रह्मचारी नन्हे भैया, सागर; ब्रह्मचारी श्रेणिक जैन, जबलपुर; ब्रह्मचारी मनोज जैन, जबलपुर; पण्डित अशोक जैन, उज्जैन; पण्डित सम्मेद शास्त्री, इन्दौर आदि थे।

इस महा-महोत्सव में ज्ञानगंगा बहाने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर; पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर; पण्डित विमलदादा झांझरी, उज्जैन; पण्डित वीरेन्द्रकुमार जैन, आगरा; पण्डित बाबूभाईजी फतेपुर; पण्डित शैलेशजी तलोद; ब्रह्मचारी हेमचन्दजी, देवलाली; डॉ. सुदीपजी, दिल्ली; पण्डित संजीवजी, जयपुर; पण्डित अनिलजी, भिण्ड आदि का समागम प्राप्त हुआ।

इस महान ज्ञानयज्ञ और शाश्वत् धाम के सूत्रधार श्री अजितजी, बड़ौदा; पण्डित राजकुमारजी, उदयपुर एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती डॉ. ममता जैन थीं।

कार्यक्रम की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार रहीं - ❀ आठ से दस हजार साधर्मियों की संख्या थी; ❀ 'बेटी बचाओ-धर्म बढ़ाओ' नाटक की अद्भुत प्रस्तुति; ❀ इन्द्रसभा -राजसभा आदि मंचीय कार्यक्रमों के आध्यात्मिक एवं रोचक प्रस्तुति; ❀ 80 फीट की एलईडी पर पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्री के वीडियो प्रवचन ❀ विद्वानों द्वारा आध्यात्मिक व्याख्यान; ❀ मुनिस्वरूप पर एवं केवलज्ञान पर तत्त्वज्ञान गर्भित गोष्ठी; ❀ शाश्वतधाम बालिकाओं का श्रमपूर्वक अद्भुत समर्पण; ❀ 'सीमन्धर देशना' नाटक का उज्जैन मण्डल द्वारा आकर्षक प्रदर्शन; ❀ आहारदान का वैराग्य एवं शान्तिपूर्वक अद्भुत दृश्य; ❀ देश के हजारों साधर्मियों द्वारा शाश्वत् बालिकाओं के लिए अविस्मरणीय योगदान; ❀ देश की सभी संस्थाओं के प्रतिनिधियों का आगमन; ❀ निर्विघ्न, उत्साह एवं उल्लासपूर्वक साधर्मी मेला।

कुन्दकुन्द स्वाध्याय संस्कार भवन का लोकार्पण सम्पन्न

भीलवाड़ा : सीमन्धर जिनालय भीलवाड़ा ट्रस्ट की ओर से कुन्दकुन्द स्वाध्याय संस्कार भवन का निर्वाण सिंघई महाचन्दजी सेठी परिवार द्वारा कराया गया। जिसका लोकार्पण दिनांक 22 दिसम्बर 2017 को किया गया। जिसमें टोडरमल स्मारक के श्री शुद्धात्मप्रकाश भारिल्ल, मङ्गलायतन से पण्डित अशोककुमार लुहाड़िया, बांसवाड़ा से पण्डित अश्वनी शास्त्री पधारे। संस्कार भवन को देखकर सकल दिगम्बर जैन समाज ने भूरि-भूरि प्रशंसा की।

तीर्थधाम चिदायतन की अस्थायी वेदी में श्री 1008 शान्तिनाथ भगवान विराजमान

हस्तिनापुर : 16-17 दिसम्बर 2017 तक ऐतिहासिक एवं पौराणिक नगरी में निर्माणाधीन तीर्थधाम चिदायतन हस्तिनापुर की पावन धरा पर अस्थायी वेदी में श्री 1008 शान्तिनाथ भगवान को यागमण्डल विधानपूर्वक, विधि-विधान से विराजमान किया गया।

इस महा-महोत्सव में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, जयपुर; पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन; पण्डित वीरेन्द्रकुमार जैन, आगरा; पण्डित कमलचन्दजी, पिड़ावा; पण्डित हितेशभाई चोबटिया, मुम्बई; डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; डॉ. मनीष जैन, मेरठ; पण्डित निखिलजी, मेरठ आदि विद्वान ज्ञानगंगा बहाने हेतु पधारे। इस महा-महोत्सव के प्रतिष्ठाचार्य बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़ एवं सह-प्रतिष्ठाचार्य पण्डित संजय शास्त्री, मङ्गलायतन थे। यह समस्त कार्यक्रम पण्डित अशोक लुहाड़िया के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ।

प्रथम दिन श्री दिगम्बर जैन तेरापंथी मन्दिर से विशाल शोभायात्रा निर्माणाधीन तीर्थधाम चिदायतन पहुँची। जहाँ भव्य पण्डाल में श्रीजी को विराजमान किया गया। ध्वजारोहण श्रीमती बीनाबहिन आर. के. जैन, देहरादून ने किया। बहिनों के द्वारा श्री यागमण्डल विधान के माण्डले पर कलश विराजमान के पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्री का सी.डी. प्रवचन हुआ। दोपहर काल में भक्तिभावपूर्वक श्री यागमण्डल विधान भावार्थपूर्वक सम्पन्न कराया गया। रात्रि में श्री जिनेन्द्रभक्ति के पश्चात् आमन्त्रित सभी विद्वानों द्वारा 'सम्यग्दर्शन' विषय पर एक महागोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसके द्वारा साधर्मियों को बहुत-बहुत लाभ प्राप्त हुआ।

द्वितीय दिन जिनेन्द्र अभिषेकपूर्वक श्री आदिनाथ एवं शान्ति-कुन्थ-अरनाथ की पूजन भक्तिभाव एवं उल्लासपूर्वक सम्पन्न की गयी। शान्तियज्ञ के बाद आमन्त्रित विद्वानों एवं श्रेष्ठीजनों का स्वागत किया गया। पण्डित संजयकुमार शास्त्री, मङ्गलायतन ने तीर्थधाम चिदायतन की विभिन्न योजनाओं का परिचय दिया। विशाल शोभायात्रापूर्वक ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री अजितप्रसाद जैन, दिल्ली ने भगवान श्री शान्तिनाथ की वीतरागी प्रतिमा को अस्थायी चैत्यालय की वेदी पर विराजमान किया।

इस कार्यक्रम में तेरापंथी मन्दिर के गुरुकुल के छात्रों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। तेरापंथी एवं बीस पंथी मन्दिर की दोनों कमेटियों ने भरपूर सहयोग प्रदान किया।

कार्यक्रम का संयोजन महामन्त्री श्री मुकेश जैन मेरठ एवं मन्त्री श्री स्वप्निल जैन, श्री मुकेश जैन, श्री अनिल जैन मङ्गलायतन ने किया। विशिष्ट सहयोग श्री अजय जैन, श्री सौरभ जैन, श्री अम्बुज जैन, युवा फैडरेशन मेरठ का प्राप्त हुआ। अन्तिम दिन पण्डित वीरेन्द्रकुमार जैन आगरा ने भामण्डल, श्री अम्बुज जैन मेरठ ने छत्र एवं दिल्ली के अन्य श्रेष्ठियों ने चंवर विराजमान किये। नवीन कार्यालय में भगवान श्री शान्तिनाथ, आचार्य श्री अकम्पनाचार्य एवं पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के चित्रपट स्थापित किये गये।

मेरठ, मुजफ्फरनगर, खतौली, सहारनपुर, देहरादून, रुड़की, खेकड़ा, दिल्ली, अलीगढ़, मवाना आदि की समाज ने आकर कार्यक्रम में धर्मलाभ प्राप्त किया। अन्त में तीर्थधाम चिदायतन शीघ्र पूर्ण होकर यहाँ विशाल पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव शीघ्र ही सम्पन्न हो ऐसी भावना भायी गयी।

वैराग्य समाचार

कोटा : श्री पद्मचन्द बजाज, पिताश्री प्रेमचन्दजी बजाज (कोटा) का देहावसान 85 वर्ष की अवस्था में शान्तभावपूर्वक हो गया। आपने तत्त्वआराधना एवं षट् आवश्यकपूर्वक अपना जीवन व्यतीत किया।

कुम्भोज : ब्रह्मचारिणी गजाबेन, कुम्भोज-बाहुबली का, देहपरिवर्तन 104 वर्ष की अवस्था में आत्माराधनापूर्वक हुआ। आप एक आदर्श एवं दृढ़ ब्रह्मचर्यव्रत की धनी थीं। आपको पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का समागम भी प्राप्त हुआ था। आपने महाराष्ट्र प्रान्त में शुद्ध तत्त्वज्ञान का बहुत प्रचार-प्रसार किया था। वर्तमान में कुम्भोज बाहुबली में रहकर, आराधनापूर्वक ब्रह्मचर्य आश्रम में अपना योगदान देते हुए आत्मकल्याण किया है।

मेरठ : श्रीपाल जैन भ्राताश्री मुकेश जैन, मेरठ का आकस्मिक निधन हो गया। आपका शान्त और सरल जीवन था।

भावनगर : श्रीमती विमलादेवी काला धर्मपत्नी श्री हीरालालजी काला, भावनगर का देहावसान शान्तभावपूर्वक हो गया। आप सरल भाववाली, स्वाध्यायी, मुमुक्षु महिला थीं। आपको पूज्य गुरुदेवश्री का समागम भी मिला।

बिजौलियां : श्रीमती प्यारबाई धनोप्या का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामपूर्वक हुआ। धनोप्या परिवार, पण्डित कैलाशचन्दजी, जैन बुलन्दशहर से विशेष प्रभावित रहा।

मङ्गलायतन परिवार आपके शीघ्र निर्वाण की भावना भाता है।

निर्माणाधीन तीर्थधाम चिदायतन में

अस्थायी वेदी प्रतिष्ठा की झलकियाँ

प्रकाशन तिथि - 14 दिसम्बर 2017 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 दिसम्बर 2017
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2015-17

स्वर्णिम अवसर

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में प्रवेश हेतु

प्रवेश-पात्रता शिविर

(गुरुवार, 01 फरवरी से मंगलवार, 06 फरवरी 2018)

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के आगामी सत्र में अंग्रेजी माध्यम से कक्षा सातवीं उत्तीर्ण कर चुके अथवा कर रहे हैं। छात्रों को इस वर्ष कक्षा आठवीं में प्रवेश-पात्रता शिविर इस बार **01 फरवरी से 06 फरवरी 2018** में रखा गया है। जो भी छात्र यहाँ के सुरम्य वातावरण में रहकर उच्चस्तरीय लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का भी लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। **वे हमारे कार्यालय से अथवा वेबसाईट से प्रवेश आवेदन-पत्र मँगाकर, अपेक्षित जानकारियों एवं प्रपत्रों के साथ भरकर भेज देवें।**

विदित हो कि कम से कम 60 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त विद्यार्थी ही आवेदन के योग्य हैं; स्थान सीमित हैं। अत: शीघ्र ही पूर्ण जानकारी प्राप्त कर आवेदन-पत्र भेजने का अनुरोध है। फार्म भेजने की अन्तिम तिथि—**10 जनवरी 2018**

निदेशक, तीर्थधाम मङ्गलायतन, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन
'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ - 202001 (उत्तरप्रदेश)
मोबाइल :— 09997996346, 9897890893, 9897069969, 9756633800
email - info@mangalayatan.com; www.mangalayatan.com

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : पण्डित संजय जैन शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com